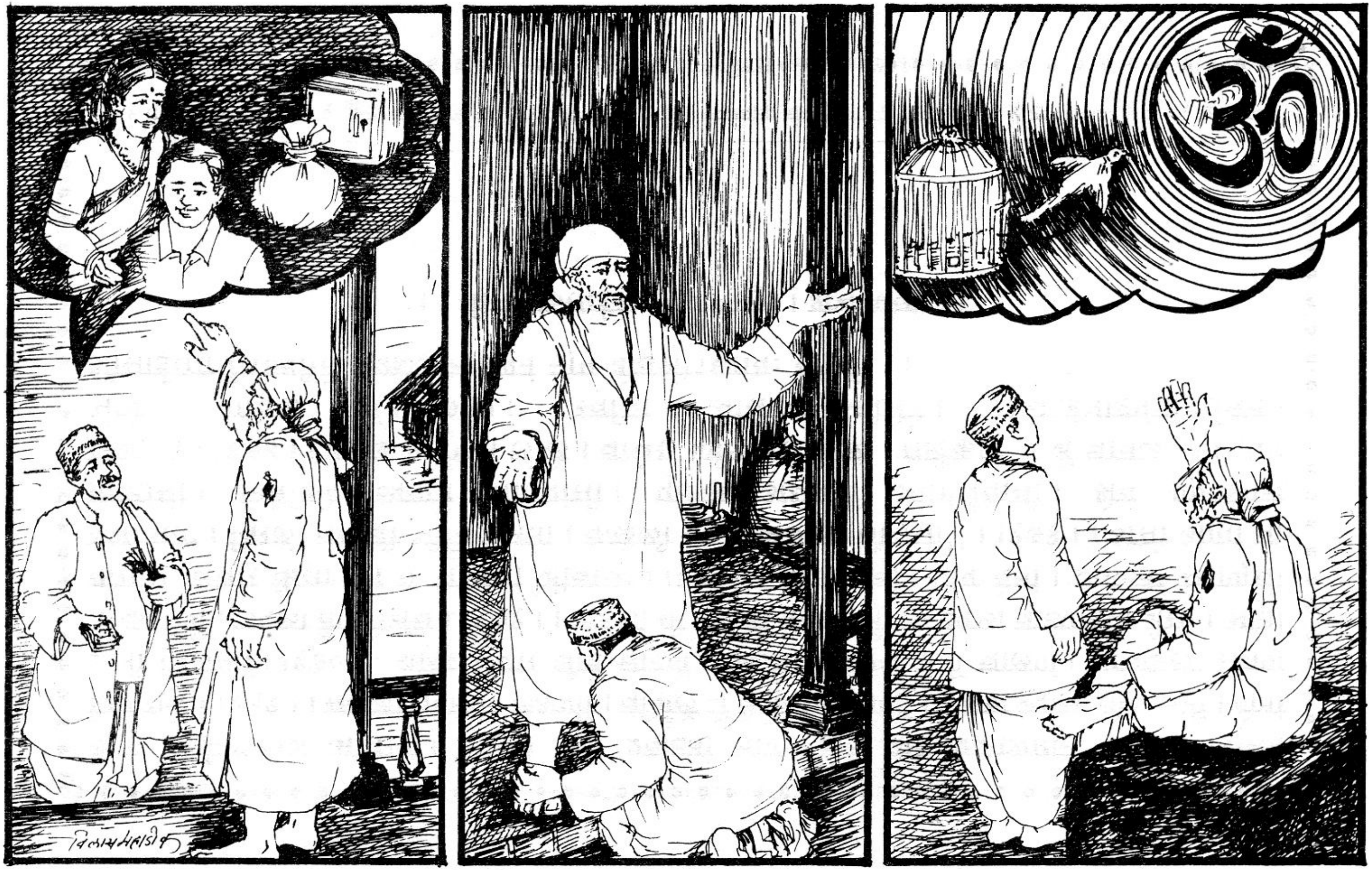
ॐ

।। अथ श्रीसाईसच्चरित ।। अध्याय १७ ।।

।। श्रीगणेशाय नमः।। श्रीसरस्वत्यै नमः।। श्रीगुरूभ्यो नमः।। श्रीकुलदेवतायै नमः।। श्रीसीतारामचंद्राभ्यां नमः।। श्रीसद्‌गुरुसाईनाथाय नमः।। गताध्यायीं अभिवचन। कीं ये अध्यायीं होईल निरूपण। श्रेय आणि प्रेयलक्षण। सादरें श्रवण तें कीजे।।१।। प्रकाश आणि अंधकार। जैसें अन्योन्यवृत्त्याकार। भिन्नरूप तें परस्पर। श्रेय-प्रेय तयापरी।।२।। प्रेयार्थ जयाचें मन धांवे। स्वार्थापासाव तो भ्रंश पावे। श्रेय तें विवेकरूप आहे। अविवेकरूप प्रेय कीं।।३।। श्रेयाचा विषय केवळ विद्या। प्रेयाचा तो निखळ अविद्या। प्रेय कधीं ना भुलवी सुज्ञां। श्रेय अज्ञां नावडे।।४।। जोंवरी कनक-कामिनीहोड। इंद्रियांसी विषयांची आवड। विवेक-वैराग्या नाहीं जोड। प्रेयचि गोड तोंवरी।।५।। नीरक्षीराची मिसळ। तेवीं प्रेय-श्रेयांची भेसळ। जेवीं दूग्ध तेवढें निवळ। सेविती मराळ मानसीं।।६।। तेवींच जे धीर बुद्धिमंत। विवेकी आणि भाग्यवंत। श्रेयासी केवळ लोलंगत। प्रेयासी विन्मुख सर्वदा।।७।। तेच पहा मंदबुद्धी। शरीर-पशू-पुत्र-धन-मानादि। योगक्षेमाच्या लागोनि नादीं। प्रेय साधिती एकलें।।८।। श्रेय काय प्रेय काय। ज्ञात झालें जरी उभय। तैसाचि ग्रहणव्यवसाय। जरी [1]स्वायत्त पुरुषासी।।९।। तरीही प्राप्त होतां उभय। निवड करणें अवघड विषय। करूनि मंदबुद्धीवरी जय। आलिंगी प्रेय तयासी।।१०।। [2]सारूं प्रेय आदरूं श्रेय। पुरुषार्थ

१. स्वावलंबी. २.दूर करू.

तो हाचि होय। असतां पयमिश्रित तोय। पयचि घेई हंस जैसा।।११।। श्रेय आणि प्रेय हीं दोन। जरी हीं पुरुषाचे स्वाधीन। असमर्थ कराया हें विवेचन। विवेकहीन मंदमति।।१२।। श्रेय तें आहे कशांत। आरंभीं जाणिलें पाहिजे निश्चित। मग येतां प्रतिबंध मार्गांत। [३]प्रतिकार साद्यंत करूं ये।।१३।। येथेंच पुरुषार्थ दृष्टीपुढां। येवोनि ठाके दत्त निधडा। म्हणोनि श्रेयार्थचि करा झगडा। करोनि धडा बुद्धीचा।।१४।। अतर्क्य संसारचक्राचे फेर। अखंड-भ्रमती अष्टौप्रहर। आध्यात्मिकादि त्रिताप प्रखर। दुर्निवार नर साहे।।१५।। तेणें आत्यंतिक दुःखकहर। सहन करितां होई जर्जर। शोधी मग तन्निवर्तनपर। सोपीं सुखकर साधनें।।१६।। दुःसह हें भवचक्र परीवर्तन। होईल कैसें याचें स्तंभन। तदर्थ असेल काय साधन। हें [४]अन्वेषण आदरी।।१७।। थोर भाग्यें हे बुद्धी उपजतां। तेथूनि निपजे पुरुषार्थता। मग तो सदुपायसाधकता। निजस्वार्थी वरील।।१८।। अनादि अविद्या अथवा माया। शुक्तिरजत मृगजलवत् वायां। अध्यासरूप महदंतराया। विलया नेलें पाहिजे।।१९।। स्वप्नांत सोन्याच्या गारा वर्षती। प्रयत्नें सांठवण केल्या [५]अमिती। वाटे वेळीं कामास येती। हारवून जाती जागृतीं।।२०।। दृष्टादृष्ट-भोगवासना। आशा तृष्णा वा कामना। सदैव प्रतिबंधक जाणा। समूळ खाणा या आधीं।।२१।। अशक्य दिसाया [७]सूर्यकरें। बुद्धी जेथूनि माघारी फिरे। जेथ वेदश्रुतीचें पाऊल न शिरे। तें निजकरें गुरू दावी।।२२।। काम-क्रोध उभयवृत्ति। करूं न देती ज्ञानप्राप्ति। श्रवण-मनन-[८]समाधिविच्छित्ति। हातोहातीं त्या करिती।।२३।। दीपाकर्पूरा होतां [९]लगटी। संभवे काय [१०]लोटालोटी। उभयत्र भेटी होण्याची

---

३. प्रतिबंध, निवारण्याचा उपाय. ४. शोध. ५. पुष्कळ. ६. खणून काढा. ७. सूर्यप्रकाशाने. ८. भंग. ९. समागम. १०. एकमेकांची ढकलाढकली.

खोटी। दीपत्वें उठे कर्पूर।।२४।। श्रुतिस्मृतींला अविहित। दुष्कर्मी लोळे जो अविरत। ज्ञानी असूनि काय हित। विहिताविहित जो नेणे।।२५।। तैसाच जो नित्य अशांत। अंत:करण असमाहित। इंद्रियलौल्यें विक्षिप्तचित्त। ज्ञानें [११]निर्वृत होईना।।२६।। ज्याचे चित्तास समाधान। जो गुरूपुत्र आचारवान। ज्याचें निश्चल आत्मानुसंधान। ज्ञानसंपन्न तो एक।।२७।। हो संसार वा मोक्षगामी। जाणें जरी निजधामीं। होई [१२]शरीररथस्वामी। केवळ [१३]वाग्मी काय करी।।२८।। येथें वाचेसी नाहीं थार। अभ्यास एक सर्वसार। [१४]रथस्थानीं योजी शरीर। स्वयें स्थिर बैसे गा।।२९।। या निजशरीराच्या रथीं। निजबुद्धीस करीं सारथी। स्वयें स्वामी बैसे रथी। स्वस्थचित्त ऐस तूं।।३०।। दुर्गमरूप [१५]रसमार्गराजी। कंठावया मग सारथी योजी। आवरी [१६]मन:प्रग्रहांमाजी। [१७]दशेंद्रियवाजी उच्छृंखळ।।३१।। घोडे जरी [१८]सैरा धांवती। लगाम राखील स्थानावरती। तो निरवून सारथिया हातीं। स्वस्थचित्तीं बैसें तूं।।३२।। सारथी कुशल आणि निपुण। तरीच घोडे चालती कसून। तोच [१९]मन:प्रग्रहपराधीन। होतां बलहीन होतसे।।३३।। विवेकबुद्धीचें सारथ्य जेथ। जो [२०]समनस्क [२१]समाहितचित्त। तयासीच परमपद प्राप्त। इतर मार्गांत थकतात।।३४।। जयाचें सदा आयुक्त मन। तया न कदा समाधान। तया न तत्पदाभिगमन। संसारपरिवर्तन चुकेना।।३५।। ऐसें तें पद परम मोठें। वास्तव्य तरी

---

११. परिपूर्ण. १२. शरीररूपी जो रथ त्याचा धनी. १३. वाचाळ, नुसता शब्दच्छल करणारा. १४. रथाच्या ठिकाणी. १५. विषयांच्या अनेक मार्गांची परंपरा. १६. मनरूपी लगामाने. १७. दशेंद्रियरूप दहा घोडे. १८. वाटेल तिकडे. १९. मनरूपी लगाम ताब्याबाहेर गेल्यावर. २०. मनावर ज्याचा ताबा आहे तो. २१. ज्याचे चित्त एकाग्रता पावले आहे.

तयाचें कोठें। मनींची आशंका फिटे। प्रकट जैं तें आपैसें।।३६।। येथें न चले तर्कवाद। अनुवाद प्रवाद वा संवाद। ईशकृपेनेंच लागेल दाद। इतर वाद ते व्यर्थ।।३७।। न चले येथ तर्काची चतुराई। तर्कज्ञमति कुंठित होई। भोळा भावचि सिद्धीस जाई। हेच नवलाई येथील।।३८।। सम्यग्ज्ञानासी जे कारण। ते गती आन ते बुद्धीही आन। तो आगमज्ञही वेगळाच जाण। उत्तम ज्ञानदानी जो।।३९।। काया अमोलिक चालिली वायां। धनकाम ही दुपारची छाया। जाणोनि हरीची दुर्घट माया। लागें पायां संतांच्या।।४०।। संत भवसागरींचें तारू। तूं हो तेथील एक उतारू। तयांवीण पैलपारू। कोण उतरूं समर्थ।।४१।। विवेक-वैराग्य यांची जोड। बांधील तयांची जो सांगड। तो हो कां जडमूढ दगड। अवघड ना त्या भवसिंधू।।४२।। षड्गुणैश्वर्य भगवंताचें। 'वैराग्य' हें प्रथमैश्वर्य साचें। असतील जे महद्भाग्याचे। विना इतरांचे वांट्या न ये।।४३।। [२२]विहितकर्म केलियावीण। होईना चित्तशुद्धी निर्माण। चित्तशुद्धि न होतां जाण। ज्ञानसंपादन घडेना।।४४।। तस्मात् कर्मचि एक जाण। ज्ञानप्राप्तिचें मूळ कारण। नित्यनैमित्तिक कर्मानुष्ठान। तेणेंच क्षाळण मळाचें।।४५।। एवं शुद्ध झालेल्या चित्तीं। विवेक-वैराग्यां उत्पत्ति। शमदमादि साधनसंपत्ति। विदेहमुक्ति ये हातीं।।४६।। फलकामसंकल्पत्यागें। चित्तैकाग्रतेच्या योगें। अनन्यत्वें जो गुरूसी शरण रिघे। पदरीं घे त्या सद्गुरू।।४७।। जो बहि:प्रवृत्तिशून्य। भाविक भक्त अनन्य। ज्ञानलाभें होई प्रज्ञ। उपाय अन्य चालेना।।४८।। तेंही ज्ञान लाभल्यावरी। अधर्ममार्गें आचरण करी। अत्र ना अमुत्र खालीं ना वरी। त्रिशंकूपरी लोळकंबे।।४९।। जीवाची

२२. शास्त्राने योग्य म्हणून ठरविलेले कर्म.

जे अज्ञानवृत्ति। तीच खरी संसारप्रवृत्ति। झालिया आत्मज्ञानप्राप्ति। तेच निवृत्ति संसारा।।५०।। आत्मज्ञ सदा अहंभावरहित। धर्माधर्म-शुभाशुभविरहित। तयांस तें संसारांतर्गत। हिताहित काय पां।।५१।। विराली देहाहंकारवृत्ति। तात्काळ तेथेंच संचली निवृत्ति। तीच जीवाची परमात्मस्थिति। खूण निश्चितीं बांधावी।।५२।। प्रवृत्तिठायीं शत्रू मित्र। निवृत्तिचें तों हें विचित्र। मीच मी पाहतां सर्वत्र। शत्रुत्व-मित्रत्व तैं कैंचे।।५३।। ऐसिया महासुखापुढें। देह-महद्दुःख तें बापुडें। तैं कोण ऐहिक सुखा रडे। महत्सुख आतुडे जैं।।५४।। ऐहिक दुःखाचे डोंगर। कोसळोत मग तयावर। परी तो न हाले लवभर। गिरिवर केवळ धीराचा।।५५।। भगवंत ज्यावरी प्रसन्न होतो। त्यालाच मग तो वैराग्य देतो। त्याशीं विवेकाची सांगड बांधितो। पार उतरवितो भवसागर।।५६।। आदर्शीं उमटल्या मुखापरी। स्पष्टात्मदर्शनीं हेतु जो धरी। तया येथें [२३]भू कीं [२३]ब्रह्मलोक वरी। जागा तिसरी नाहींच।।५७।। यागीं होतां देवतातृप्ति। पितृलोकाची होईल प्राप्ति। लाधेल कर्मफलोपभुक्ति। आत्मसंवित्ति लाधेना।।५८।। गंधर्व-महर्जनस्तपः-सत्य। तेथील आत्मदर्शन अति [२४]अविविक्त। यालागीं जे आत्मदर्शनासक्त। भूलोक यथोक्त वांच्छिती।।५९।। येथें होते चित्तशुद्धि। आदर्शापरी निर्मल बुद्धि। शुद्ध आत्मस्वरूप त्रिशुद्धि। प्रतिबिंबित होतसे।।६०।। दुजें स्थान जें ब्रह्मलोक। तेथेंही होतो [२५]आत्मावलोक। परी सायास लागती अनेक। कष्टकारक अतितर तो।।६१।। [२६]सर्पावाणी माया वेटाळी। [२७]अक्षी आंतून आंतडीं पिळी। बाहेरही सर्वांग कवटाळी। समर्थ टाळी कोण तिये।।६२।। ''तुम्ही

२३. खाली भूलोक आणि वर ब्रह्मलोक. २४. अस्पष्ट. २५. आत्मप्राप्ति. २६. सर्पाप्रमाणे. २७. समूळ, पूर्णपणे.

बसल्या बसल्या पहातां। खिशांत पन्नासपट रुपये असतां। काढा पाहूं बाहेर आतां। ब्रह्म तों खिशांत तुमचेच''॥६३॥ काढा म्हणतां हात घालिती। गृहस्थ पुडकें खिशांतून काढिती। दहादहांच्या पंचविंशती। नोटा मोजिती पुडक्यांत॥६४॥ गृहस्थ विरघळले मनींचे मनीं। केवढे महाराज अंतर्ज्ञानी। मस्तक ठेविती तयांचे चरणीं। आशीर्वचनीं उत्कंठा॥६५॥ मग बाबा म्हणती ते वेळे। ''गुंडाळ आपुलें ब्रह्मगुंडाळें। लोभाचें जाहल्यावीण वाटोळें। ब्रह्म न मिळे तुजलागीं॥६६॥ पुत्रपश्वादि-वित्तार्जन। आसक्त यांतचि जयाचें मन। तयास कैंचें ब्रह्मज्ञान। द्रव्यव्यवधान न सुटतां॥६७॥ महाकठिण वित्तमोह। तृष्णावर्त [२८]दुःखगाह। मद मत्सर मकर दुःसह। एक निःस्पृह तरेल॥६८॥ लोभाशीं ब्रह्माचें अखंड वैर। तेथें ध्याना नाहीं अवसर। कैंची मुक्ति विरक्ती साचार। आचारभ्रष्ट लोभिष्ट॥६९॥ लोभा ठायीं नसे शांती। ना समाधान ना निश्चिंती। एक लोभ वसतां चित्तीं। जाती मातींत साधनें॥७०॥ श्रुतिस्मृतीस अविहित। ऐसें निषिद्ध जें दुश्चरित। त्यांतचि सदैव जो आसक्त। असमाहितचित्त तो॥७१॥ तया नांव 'विक्षिप्तचित्त'। सदैव दुष्कर्मीं [२९]व्यावृत्त। अखंड विषयकर्दमीं लोळत। हिताहित देखेना॥७२॥ हो कां ब्रह्मविज्ञानसंपन्न। नाहीं जो फलेच्छेसी [३०]निर्विण्ण। तोंवरी [३१]वाव तें ब्रह्मविज्ञान। आत्मसंपन्न नाहीं तो॥७३॥ कोण कांहीं मागूं येतां। अधिकार पाहती संत प्रथमता। जैसी जयाची योग्यायोग्यता। तैसेंच त्यातें देती ते॥७४॥ जया मनीं रात्रंदिन। देहाभिमान विषयचिंतन। तया गुरूपदेशाचा शीण। व्यर्थ नागवण उभयार्थां॥७५॥ चित्तशुद्धि जाहल्यावीण। परमार्थी

---

२८. दुःखाचा डोह २९. गढलेला. ३०. विरक्त. ३१. फुकट, व्यर्थ.

रिघूं पाहे जो आपण। ज्ञानगर्वाची ती मिरवण। केवळ शीण तो खरा॥७६॥ यास्तव रुचेल तेंच बोलावें। पचेल तितुकेंचि अन्न खावें। नातरी व्यर्थ अजीर्ण व्हावें। हें तों ठावें सकळिकां॥७७॥ माझा भांडार भरपूर आहे। देईन जो जो जें जें चाहे। परी ग्राहकाची शक्ति पाहें। देतों मी साहे तेंच कीं॥७८॥ ऐकाल जरी हें लक्ष देऊन। पावाल तुम्ही कृतकल्याण। या पवित्र मशिदींत बैसून। असत्य भाषण न करीं मी''॥७९॥ ही संतवाक्यसुधासरिता। भावार्थें येथें बुडी देतां। अंतर्बाह्य लाधे शुद्धता। क्षाळण होतां मळाचें॥८०॥ ऐसा साईनाथांचा महिमा। वर्णूं जातां न पुरे सीमा। उपमूं कैसें त्या निरुपमा। शुद्धप्रेमाआधीन तो॥८१॥ माउली ती सकळांची। विश्रांती आर्तश्रांतांची। कल्पवल्ली आश्रितांची। दीनादुबळ्यांची जी छाया॥८२॥ संसारावरी पाणी देऊन। गिरिकपाटीं मौन धरून। एकांतवास स्वीकारून। निजकल्याणैकदक्ष जो॥८३॥ ऐसे संत असती बहुत। केवळ जे साधिती निजस्वार्थ। अथवा केवळ निजपरमार्थ। काय कीं अर्थ इतरांतें॥८४॥ तेवीं न साईबाबा महंत। नसतां आप्तेष्ट गणगोत। घरदार वा जायासुत। प्रपंचांत राहती॥८५॥ करतलभिक्षा पांच घरा। तरुतलवास अष्टौ प्रहरा। मांडूनि थिता प्रपंच-पसारा। व्यवहार सारा शिकविती॥८६॥ साधूनि निज ब्रह्मस्थिति। जनतेच्या कल्याणा झिजती। ऐसे संत महामति। विरळा जगतीं असतील॥८७॥ धन्य तो देश धन्य तें कुळ। धन्य तीं आईबापें निर्मळ। धन्य त्यांचा कुसवा सोज्ज्वळ। प्रसवला निर्मळ हें रत्न॥८८॥ अनायासें परीस लाधला। पाषाण समजुनि बहुतीं झुगारिला। शिरडींत या परम भागवताला। कोणीं न ओळखिला बहुकाळ॥८९॥ जैसें उकिरडां रत्न पडावें। पोरांबाळां सांपडावें। त्यांनीं वाटेल तेथें उडवावें।

खुशाल तुडवावें दगडसें।।९०।। असो यापरी तो ब्रह्माचा भोक्ता। आशीर्वचनीं पावे तृप्तता। तीच गत तुम्हां आम्हां समस्तां। बिकट रस्ता सोडावा।।९१।। जोंवरी बाह्य विषयांचें सेवन। शब्दश्रवण स्पर्शसंवेदन। [३२]आमोदाघ्राणन बाह्यांगदर्शन। तंव न [३३]विरोधन विषयार्थां।।९२।। झालियावीण इंद्रियनिरोधन। [३४]स्वभावप्रवृत्तपरावर्तन। [३५]प्रत्यग्रूपाचें अवलोकन। वा [३६]तद्बोधन अशक्य।।९३।। आधीं व्हावें सर्वैषणाविहीन। मग सद्गुरूसीं अनन्यशरण। ऐसा जो दृढश्रद्धासंपन्न। आत्मविज्ञाना पात्र तो।।९४।। श्रोत्रादि पंचज्ञानेंद्रियें। त्यागिजेतील जैं स्वस्वविषयें। मन संकल्प विकल्प स्वयें। त्यागील निश्चयें जे काळीं।।९५।। एवं प्रतिनिवृत्त जैं अंतर। बुद्धिही सांडील [३७]निश्चयव्यापार। तेच ते परमगती साचार। निर्विकार ब्रह्म तें।।९६।। बुद्धी होईल निश्चयशून्य। चित्तही जैं पावेल चैतन्य। तैंच तोच एक न तदन्य। आत्म्यातें धन्य जाणील।।९७।। होतां विषयांपासून विन्मुख। होतील इंद्रियें आत्मोन्मुख। तेव्हांच प्रकटेल निजसुख। इतर सर्व असुख तें।।९८।। जें विषयविकार-[३८]प्रच्छन्न। अतिसूक्ष्म [३९]दुर्दर्श आत्मज्ञान। परमानंदप्राप्तिचें साधन। अतिगहन आकळाया।।९९।। हिरण्यगर्भपदापर्यंत। [४०]इहामूत्रविषयीं विरक्त। तोच एक [४१]ब्रह्मपदाभिषिक्त। तो एक मुक्त जाणावा।।१००।। चित्तास विषयापासून। हळूहळू [४२]माघौतें फिरवून। आत्मरूपीं स्थिर करून। आत्मज्ञान जोडावें।।१०१।। इहामूत्रफळभोगविराग। हर्षशोकादि द्वंद्वत्याग। बुद्धिमंतासीच हा भोग। अध्यात्मयोग तो

---

३२. सुगंध घेणे. ३३. संयमन. ३४. स्वभावत:च आलेले विन्मुखपण. ३५. प्रत्यगात्म्याचे. ३६. त्याचा प्रबोध. ३७. निश्चय करण्याचा जो बुद्धीचा व्यापार तो. ३८. विषय-विकार यांनी झाकलेले. ३९. दिसण्यास अवघड. ४०. या लोकीच्या व परलोकीच्या विषयांमध्ये. ४१. ब्रह्मपदावर ज्याला अभिषेक झाला आहे असा. ४२. माघारे. ४३. आधिदैविक, आध्यात्मिक या तीन तापांत.

हाचि ।।१०२।। [43]अधिदैवाध्यात्माधिभौतिकीं। निखिल वडवानल ज्वालादिकीं। संतप्त संसारार्णवोदकीं। कोण कीं सुखी असेल ।।१०३।। तेणें व्हावया निजसमुद्धरण। व्हावें साईप्रसादसंपन्न। करावें तच्चरित्रावलोकन। श्रवण मनन सादरें ।।१०४।। हें श्रीसाईनाथचरित्र। श्रोतीं [45]सपुत्र-मित्र-कलत्र। परीसतां साधेल इहपरत्र। लीला विचित्र बाबांची ।।१०५।। सभाग्य श्रद्धाळू श्रोते। तेचि या कथांचे परीसते। परीसतां अति हळुवारचित्तें। शांतते येते शांतता ।।१०६।। या [46]कथानि:स्यंदनिर्झरें। कर्माकर्मलवण विरे। श्रवणद्वारें नयनीं शिरे। रूप साजिरें साईचें ।।१०७।। चरित्रश्रवणें पातकां [48]ऱ्हास। चरित्रश्रवणें काळावरी [49]कास। चरित्रश्रवणें परमोल्हास। श्रोते निरायास पावती ।।१०८।। श्रवणें शुद्ध अंत:करण। श्रवणें चुकेल जन्म-मरण। श्रवणें श्रोतयां ब्रह्मपण। [50]केवळ [51]ब्रह्मार्पणकर्मानें ।।१०९।। ऐसा हा [52]साईसेवाकाम। सेवकां सदा करी [53]निष्काम। निजभक्तां श्रीसाईराम। देईल आराम सर्वदा ।।११०।। भागश: या ग्रंथाचें वाचन। अथवा श्रवण आणि परिशीलन। मनन आणि निदिध्यासन। करा अनुदिन श्रोते हो ।।१११।। ''आनंदो ब्रह्मेति व्यजानात्''। हे तरी तैत्तिरीय श्रुति विख्यात। तेंच ते बाबा अनुवादत। श्रुतिनिर्णीत भक्तांतें ।।११२।। 'फिकीर न करावी यत्किंचित। सदा असावें आनंदभरित। चिंता न करावी आमरणान्त।' उपदेश नित्य बाबांचा ।।११३।। असो ब्रह्मतत्त्वनिर्धारण। हें या अध्यायाचें धोरण। कीं ही नौका भवतारण। जाईल शरण साईंस त्या ।।११४।।

---

४४. संसाररूपी सागरात. ४५. आपले कुटुंब, पुत्र आणि आप्त यांसह. ४६. या कथारूप झऱ्याच्या प्रवाहात. ४७. कर्मरूप व अकर्मरूप क्षार. ४८. नाश. ४९. झगडून विजयी होण्याची तयारी. ५०. फक्त. ५१. हातून जे जे कर्म घडेल त्याच्या फलप्राप्तीची इच्छा न ठेवता ते ब्रह्मार्पण केल्याने. ५२. साईंच्या सेवेची इच्छा. ५३. इच्छारहित. ५४. व्यक्तिव्यक्तीचे.

हितवचन वारंवार। सांगावें करावा परोपकार। बाबा तयाचा करूनि अनुकार। तद्नुसार प्रवर्तती।।११५।। हें सयुक्तिक कीं अयुक्तिक। हे मतभेद केवळ [५४]वैयक्तिक। जेणें सामान्य जनतेसी [५५]तोख। तोच कीं रोख ये ग्रंथीं।।११६।। हेंचि आहे येथें प्रयोजन। बाबा जाणीत कार्यकारण। जैसें तयाचें मनेप्सित जाण। [५६]होष्यमाणही तैसेंच।।११७।। गुरूमुखींच्या कथा ऐकाव्या। अतर्क्य लीला अनुभवाव्या। स्मरतील त्या संग्रहीं ठेवाव्या। परीसवाव्या इतरांतें।।११८।। साईंचें हें चरित्र बरें। श्रवण करितां अत्यादरें। श्रोतियावक्त्यांचें दैन्य [५७]हरे। दुर्दिन ओसरे अवघ्यांचें।।११९।। पाहोनि बाबांची अलौकिक लीला। कोण अभागी चकित न झाला। केवळ दर्शनमात्रेंचि निवाला। लीन झाला पदकमलीं।।१२०।। विशद चरितें या साईंचीं। प्रशस्त चित्तें ऐकावयाचीं। संधी येतां ऐसी सुखाची। कोण फुकाची दवडील।।१२१।। पुत्र-मित्र-कलत्रावर्त। [५८]कामक्रोधादिग्राहयुक्त। [५९]नाना रोग [६०]तिमिंगिलोज्जृंभित। उद्वेलित आशाकल्लोळीं।।१२२।। वेळीं उद्वेगाचा झटका। येवोनि जातो घटकोघटका। द्वंद्व माजूनि उडतो खटका। परी न तटका तोडावे।।१२३।। स्वयेंच जीवास करावा बोध। कीं तूंच आहेस ब्रह्म शुद्ध। झालासी देहसंगें बद्ध। [६२]नलिकापिनद्ध शुक जैसा।।१२४।। भुललासी केवळ मोहमाये। तेणें विसरलासी निजसोये। तुझा तूंच सावध होयें। स्वरूपा ये झडकरी।।१२५।। भ्रमामुळें वाढला भ्रम। देहाभिमानादि संभ्रम। मृगजलसम हें ''मी मम''। जाणूनि निर्मम होईं कां।।१२६।। या मी-तूंपणाचे प्रपंचीं।

---

५५. संतोष. ५६. होणारे. ५७. नष्ट होई. ५८. भोवरा. ५९. सुसरी, नक्र. ६०. तिमिंगिल नावाचा एक मोठा मासा. ६१. खवळलेला. ६२. पकडण्यासाठी बांधलेल्या नळीला पायांनी घट्ट धरून जो आपल्यास उलटा टांगून घेतो असा पोपट.

गुंतावें कां नीट [६३]विवंचीं। सोड आवळले पाय [६४]पंची। उड्डाणें उंची विहर कीं।।१२७।। मुक्त तेथें बद्धता असे। बद्धतेपाशीं मुक्तता वसे। परत होऊनियां उभयदशे। शुद्ध स्ववशें राहीं बा।।१२८।। हें तों साक्षेपतेचें ज्ञान। सुख वा दुःख सर्वाज्ञान। दवडोनि संपादीं विज्ञान। ब्रह्मज्ञान [६५]पाशींच।।१२९।। देहीं जोंवर मी-तूंपणा। तों न तूं निजहिताचा [६६]देखणा। तो टाक, पाहीं आपआपणा। कृपणपणा भिरकावीं।।१३०।। कुबेरासम धनवंत। भिक्षावृत्ति जरी विचरत। तरी तें केवळ नष्टचरित। विपरीतपण अज्ञानानें।।१३१।। करावें नित्य सच्छास्त्रश्रवण। विश्वासें पाळावें सद्गुरूवचन। राहूनि सदा सावधान। अनुसंधान राखावें।।१३२।। पाहोनि जन ते आचारपद्धति। निजोद्धार मार्ग चोखाळती। असंख्य जीव उद्धरती। सहज गती त्यांचेनी।।१३३।। कदा येईल ऐसी घटका। घडेल भवपाशांतुनी सुटका। जया अहर्निश हा मनास चटका। अवचट तटका तो सोडी।।१३४।। साधवेल तो एकान्त साधून। संसार निःसार ही गांठ बांधून। अध्ययन आणि आत्मचिंतन। यांत [६७]चिरंतन असावें।।१३५।। भक्तिश्रद्धान्वित मनें। शिष्यें पूर्ण विनयसंपन्नें। शरण साष्टांग गेलियाविणें। [६८]ज्ञानकेणें गुरू न दे।।१३६।। सर्वस्वीं गुरूशुश्रूषा करावी। [६९]बंधमोक्षवृत्ति विवरावी। विद्याविद्यादि प्रश्नीं धरावी। गुरूरावीं सफलता।।१३७।। आत्मा कोण परात्मा कोण। कोणा न सांगावें गुरूवीण। गुरूही न येतां शरण पूर्ण। देती न कणही ज्ञानाचा।।१३८।। गुरूविना इतरें देतां ज्ञाना। संसारनिवर्तक तें होईना। मोक्षफलप्रद लवही असेना। मना ठसेना कदापि।।१३९।। तस्मात् गुरूविना ज्ञान नोहे। विदित सकल विद्वानां हें।

---

६३. विचार कर. ६४. हे पोपटा. ६५. जवळच. ६६. पाहणारा. ६७. निरंतर. ६८. ज्ञानाचा ठेवा. ६९. बंधमोक्षाच्या गोष्टी.

ब्रह्मात्मैक्यविषयीं सोये। समर्थ पाय गुरूचे॥१४०॥ तेथें न करितां अनमान। सांडोनि ताठा अभिमान। होवोनि अखंड दंडायमान। खालवा मान गुरूपदीं॥१४१॥ दासानुदास मी तुमचा। भरवसा एक तव पदांचा। धरोनि पावलों म्हणा [७०]वाचा। धडा जीवाचा दृढ करा॥१४२॥ मग पहा चमत्कार तयाचा। तो गुरूदयार्णव हेलावे साचा। निजशेजीं [७१]तरंगाच्या। झेली वरच्यावरी तो॥१४३॥ शिरीं ठेवी अभयहस्त। इडा पिडा करोनि उद्ध्वस्त। जाळोनि पातकाच्या राशी समस्त। उदी मस्तकीं फांसी तो॥१४४॥ एवं ब्रह्मार्थिया ब्रह्मनिरूपण। हें तों केवळ निमित्त जाण। जीवशिवैक्यतेची खूण। भक्तां संपूर्ण कथियेली॥१४५॥ आतां महाराजांची एवढी। अतुल प्रज्ञा विद्या गाढी। असतां थट्टेची काय प्रौढी। काय आवडी विनोदीं॥१४६॥ सहज शंका घेईल मन। परी पाहतां विचारून। एकचि आहे समाधान। सावधान परीसिजे॥१४७॥ मुलांबाळांसवें बोलतां। तयांच्या बोबड्या बोलांत रमतां। प्रौढत्वाच्या कथा वार्ता। कधींही होतात काय कीं॥१४८॥ नसतें प्रेम का तयांवरी। तें काय वर्णूं शकेल वैखरी। परी बोधप्रदान कुसरी। विनोद मस्करी ही एक॥१४९॥ काय आहे रोग पोटीं। हे काय आहे बाळास दृष्टी। मातेस पाजावी लागे गुटी। जरी तें हट्टी पिईना॥१५०॥ कधीं आंजारून गोंजारून। कधीं नेत्र पिंजारून। कधीं [७२]चतुर्दशरत्नप्रयोजन। कधीं आलिंगन सप्रेम॥१५१॥ तींच होऊं लागतां प्रौढ। करावें वाटे तयांचें कोड। परी बुद्धि तीव्र वा बोजड। तैसाच निवाड ज्ञानाचा॥१५२॥ तीव्र बुद्धीचें तीव्र ग्रहण। उपदेश ठरतां नलगे क्षण। तेंच जडबुद्धीचें विलक्षण। बहुत रक्षण सायास॥१५३॥ समर्थ साई

---

७०. वाचेने. ७१. लाटांच्या शय्येवर. ७२. चौदाव्या रत्नाची (छडीची) योजना.

ज्ञाननिधी। जया भक्ताची जैसी बुद्धी। आधीं निर्धारून पात्रशुद्धि। ज्ञानसमृद्धि वितरत।।१५४।। तयांस पूर्ण अंतर्ज्ञान। तयांस आधींच सर्वांची [७३]जाण। जयास जैसें योग्य साधन। तयाचें नियमन तैसेंच।।१५५।। जैसा जयाचा अधिकार। तयाचा आधींच करूनि विचार। योग्यायोग्यतेनुसार। भक्तांचा भार बाबांना।।१५६।। तैसेच आम्ही दिसाया थोर। परी त्या सिद्ध साईसमोर। खरेच आम्ही पोरांहूनि पोर। विनोदीं आतुर सर्वदा।।१५७।। विनोदांचें बाबा आगर। जे जे ठायीं जयासी आदर। तें तें यथेष्ट पुरवूनि समग्र। राखीत अव्यग्र भक्तांस।।१५८।। सुबुद्ध वा बुद्धिमंद। वाचितां प्रकटेल परमानंद। परीसतां वाढेल श्रवणछंद। मननें स्वानंद-संतुष्टी।।१५९।। [७४]आवर्तनीं परमार्थबोध। निदिध्यासनीं महदाल्हाद। सौख्य उपजेल अखंड निर्बाध। ऐसी अगाध ही लीला।।१६०।। भाग्यें जेणें अनुभव येथिला। यत्किंचितही असेल भोगिला। कायावाचामनें तो खिळिला। अतर्क्य लीला साईंची।।१६१।। हेमाड साईपायीं शरण। विनोदमार्गें ज्ञानप्रदान। भक्तकल्याण एक प्रयोजन। निमित्त जाण ब्रह्मार्थियां।।१६२।। पुढील अध्याय याहूनि गोड। श्रवणार्थियांचें पुरेल कोड। माझिया जीवींची गुप्त होड। फोड फोडोनि पुरविलीं।।१६३।। मी जाईन [७५]माधवापाशीं। बाबांचा निरोप देईन त्यांशी। पावेन कैसा अनुग्रहाशी। साद्यंतेंशी परीसा जी।।१६४।। स्वस्ति श्रीसंतसज्जनप्रेरिते। भक्तहेमाडपंतविरचिते। श्रीसाईसमर्थसच्चरिते। ब्रह्मज्ञानकथनं नाम सप्तदशोऽध्यायः संपूर्णः।।

।। श्रीसद्‌गुरूसाईनाथार्पणमस्तु ।। शुभं भवतु ।।

---

७३. जाणीव. ७४. एकावर एक पाठ. ७५. माधवराव देशपांडे, ज्यांना बाबा ‘शामा’ या नावाने संबोधित.